ISSN: 2393-8048
International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal.
SJIF Impact Factor =8.152, January-June 2025, Submitted in January 2025

चक्र जागरण के लिए सूर्य नमस्कार

सन्दीप कुमार, शोधार्थी, टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर
डॉ0 रामदेवा राम, सहायक आचार्य, टांटिया विश्वविद्यालय, श्री गंगानगर

प्रस्तावित शोध की भूमिका

शरीर का स्वस्थ रहना तो हमारी प्राथमिक आवश्यकता है ही, परन्तु मन का स्वस्थ रहना उससे भी अधिक आवश्यक है। अस्वाभाविक इच्छाओं, भय एवम् तनाव के कारण, मन के रोगी हो जाने से हमारी दिनचर्या भी बिगड़ जाती है। हमारे रहन–सहन, खान–पान, व्यवहार, चरित्र आदि के दूषित हो जाने से इनका गम्भीर प्रभाव तो हमारे जीवन पर पड़ता ही है, साथ ही शरीर में प्राण (शक्ति) का प्रवाह भी व्यवस्थित नहीं हो पाता, अतः हमारा शरीर विभिन्न रोगों से ग्रस्त हो जाता है व हमारी शक्ति, प्रसन्नता और शान्ति नष्ट हो जाती है।

शरीर और मन के ठीक होने पर भी हमारी निर्णय करने की शक्ति (बुद्धि) यदि ठीक न हो तो, अपरिपक्व बुद्धि के अनुसार कार्य करने पर लाभ तो दूर रहा, हानि होने की सम्भावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। अतः हमें ऐसी पद्धतियों की आवश्यकता का अनुभव होता है, जिसके द्वारा शरीर, मन व बुद्धि तीनों स्वस्थ एवम् सन्तुलित बन सके और यह तभी सम्भव होगा जब हम शक्ति और शान्ति के स्रोत से जुड़ेंगे।

हमारे सौर मण्डल में, इन सभी स्रोतों में अन्यतम सूर्य ही शक्ति का वह महान केन्द्र है, जिससे निःसृत प्राण से यह समस्त जगत आप्लावित (भरा हुआ) है, और हम सबके जीवन का आधार भी वही है, अतः हमारा लक्ष्य विभिन्न विधियों के द्वारा सूर्य की इस शक्ति को अपने अन्दर अधिकाधिक मात्रा में धारण करने का ही होना चाहिए, जिससे कि हम भी शक्ति सम्पन्न बन सकें ।

प्रबल पराक्रमी सूर्य की सामर्थ्य को देखकर इसके निर्माता की ओर ध्यान जाना भी स्वाभाविक ही है, जब श्सूर्यश भी इतना शक्तिशाली है, तो इस सम्पूर्ण जगत् की रचना और पालन करने वाली श्परमसत्ताश की शक्ति और सामर्थ्य को शब्दों की सीमा में आँकना कैसे सम्भव हो सकता है ?

हम सब भी अपने लिये किसी भी सीमा को कहाँ पसन्द करते हैं !

हम तो हमेशा–हमेशा के लिये शक्तिशाली बने रहना चाहते हैं, साथ ही हमें नित्य निरन्तर आनन्द मिलता रहे, इसमें थोड़ा सा भी विघ्न नहीं आवे, यहीतो हम सबकी माँग है। अमृत पुत्रों की इस माँग को अस्वाभाविक भी कैसे कहा जा सकता है? परन्तु बिन्दु का सिन्धु से वियोग तो उसे निर्बल ही बना सकता है, और निर्बल को निरन्तर सुख की आकांक्षा का औचित्य क्या है?

अनन्त आनन्द और चैतन्य शक्ति जिनका नित्य स्वरूप है, उन परमात्मा से जुड़ना ही इसका एक मात्र और साथ ही सरलतम उपाय है, क्योंकि उनको कहीं बाहर से तो आना नहीं है, वे तो हम सब के हृदय में ही विराजमान है, केवल उनको हमारे लिए प्रकट ही तो होना है। अतः प्राणी मात्र का अन्तिम लक्ष्य अपने अन्तर में विराजमान परमात्मा ही हो सकते हैं।

लक्ष्य स्पष्ट होने पर भी साधन की अपेक्षा तो होती ही है, परन्तु हमें इस सम्बन्ध में भी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। यह हमारा परम सौभाग्य है कि हम उन परम पूज्य ऋषियों की सन्तान हैं जिन्होंने दीर्घकाल तक तपस्या करके अपने अनुभवों द्वारा ऐसे अनेक मार्गों को जाना है, जिनके द्वारा भिन्न–भिन्न शरीर–मन की स्थिति वाले सभी व्यक्तियों के लिए धीरे–धीरे शक्ति सम्पन्न होते हुए अपना लक्ष्य प्राप्त करना सुलभ हो सके अर्थात् जो जहाँ खड़ा है, वह वहीं से चलना प्रारम्भ करके शिखर पर पहुँच सके।

अत्यन्त साधारण सा दिखायी देने वाला सूर्यनमस्कार भी उन अनेक मार्गों में से एक है, जो हम में से अधिकांश शरीर के स्तर पर ही जीने वाले मनुष्यों के लिए भी शिखर तक पहुँचने का एक अत्यन्त सुन्दर उपाय है। आइये इसकी कुछ विशेषताओं पर हम एक दृष्टि डालें।

शोध के सोपान

यह एक अत्यन्त सरल पद्धति है, जिसे आठ (आधुनिक मत में छः वर्ष की आयु के बालक से लगाकर सामान्य शक्ति वाले वृद्ध व्यक्ति तक सभी कर सकते हैं। इसमें कुछ खर्च भी तो नहीं करना पड़ता, मात्र नित्य थोड़ा सा समय ही तो लगाना पड़ता है। शरीर में रोग के दो प्रमुख कारण होते हैं एकः ऊर्जा की कमी और दोः विषाक्त पदार्थों का जमाव सूर्य नमस्कार के अभ्यास से शरीर में प्राण की आपूर्ति के साथ ही विषाक्त पदार्थों के बाहर निकल जाने से, शरीर निर्मल और नीरोग बन जाता है। मन में उठने वाले विचार भी वस्तुतः ऊर्जा का ही स्वरूप हैं, अतः इसके अभ्यास द्वारा मन को पर्याप्त ऊर्जा मिलने से मानसिक निर्बलता भी दूर हो जाती है। स्वरूपतः (अपने मूल रूप में) बुद्धि कभी अशुद्ध नहीं होती, केवल उस पर आवरण आ जाने के कारण ही वह कुंठित होती है। इस अभ्यास के द्वारा यह आवरण धीरे–धीरे दूर होता है और परिणामस्वरूप हमारी बुद्धि–शक्ति भी बढ़ती जाती है। अपने सुधार के लिए कष्ट देने वाली पुरानी आदतों को छोड़ना भी किसी–किसी के लिए कठिन हो सकता है, परन्तु इस विधि में अस्वाभाविक रूप से त्याग करने जैसी तो कोई बात ही नहीं है। शारीरिक–मानसिक दोषों आदि का त्याग भी स्वाभाविक रूप से ही होता है। बाहरी सहायता पर सम्पूर्ण निर्भरता लक्ष्य प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा सिद्ध होती है। इस विधि में हमारे अन्तःकरण में भरी पड़ी अथाह शक्ति को ही जगाकर उपयोग में लाया जाता है, फलस्वरूप बाहरी सहायता पर कम से कम निर्भर रहना पड़ता है। हमारे स्थूल शरीर पर लगने वाले पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल से तो हम सब परिचित हैं ही। इससे कुछ कम ही सही हमारे मन आदि अन्तः करण में भी तो कुछ जड़ता है ही, अतः इस पर भी यह गुरुत्वाकर्षण बल लगना स्वाभाविक है। इस बल से अन्तःकरण बंधा हुआ सा होने के कारण मन में सहज शक्ति और आनन्द कैसे सम्भव हो सकता है।

सूर्यनमस्कार के अभ्यास द्वारा अन्तःकरण में प्राण की आपूर्ति व्यवस्थित रूप से होने के कारण इसकी जड़ता धीरे–धीरे कम होने से पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण बल तो अपेक्षाकृत कम लगता ही है, साथ ही सूर्य सम्बन्धी रजोगुणी प्राण बढ़ने से उसकी ओर आकर्षण भी बढ़ता है।

परिचयात्मक शोध का महत्व

सूर्य शब्द को सुनने से ही हमें प्रकाश, गति और शक्ति का स्मरण होने लगता है। वस्तुतः हमारे सौर मण्डल में स्थित सभी ग्रह पहले सूर्य का ही भाग थे। उससे अलग हो जाने के समय से ही ये क्रमशः तमोगुण (ऊर्जा प्रकाश व विस्तार में कमी, जड़ता) बढ़ने से ठण्डे होते गये और सूर्य के ओज, तेज एवम् प्रबल पराक्रम को बहुत कुछ अंशों मे खो देने के कारण ही तो अपनी वर्तमान दशा को प्राप्त हुए हैं। जिस प्रकार सूर्य से ही हमारा सौर मण्डल बना है, ठीक ऐसे ही इस विशाल ब्रह्माण्ड में अनेक सूर्य और उनसे सम्बन्धित अनेकानेक ग्रहों का भी निर्माण हुआ है। ये सभी सूर्य, अतुलित शक्ति और तेज युक्त एक विराट सूर्य के अंश मात्र हैं, और अपने परिवार सहित उस विराट सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। यह विराट सूर्य भी तो सृष्टि के ऊँचे स्तरों के सतोगुणी प्राण में क्रमशः रजोगुण बढ़ जाने से ही निर्मित हुआ है।

इस प्रकार सृष्टि में सर्वत्र एक ही तत्व (प्राण) सत्त्व, रजस् व तमस् के तारतम्यानुसार अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुआ है। परिवर्तन का यह क्रम अब भी रुका थोड़े ही है, यह तो प्रकृति में नित्य निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

शुद्ध सात्त्विक प्राण में रजोगुण बढ़ने से विशिष्ट परिस्थितियाँ उत्पन्न होती है, अर्थात् रजोगुण के प्रभाव में क्रियाशीलता बढ़ने से ही किसी–किसी स्थान में दबाव के कारण कुछ शक्ति केन्द्रों का निर्माण होता है, और उसके पास में स्थित प्राण का एक अंश उसके चारों तरफ वलय के रूप में प्रवाहित होने लगता है।

इन प्राणवलयों के निर्माण से ये शक्ति केन्द्र अपनी स्वतन्त्र सत्ता के रूप में तो अभिव्यक्त होते ही हैं, साथ ही इनका विस्तार भी तो सीमित हो जाता है, और इस प्रकार प्राण वलयों में किंचित् तमोगुण बढ़ने से इसके प्रवाह का वेग भी कम पड़ता जाता है। परन्तु इसका सबसे ज्यादा असर इसके बाहरी भाग पर ही पड़ता है, जिससे प्राण का यह अंश तमोगुण के प्रभाव में धीरे–धीरे अपने पूर्व रूप की अपेक्षा स्थूल आकार धारण करने लगता है।

सृष्टि के मूल में ही परमात्मा का यह संकल्प श्एकोऽहम् बहु स्यामश अर्थात् ष्मैं एक हूँ और बहुत हो जाऊंष कार्य कर रहा है।

इन एक हूं और बहुत हो जाऊं दोनों संकल्पों के साथ–साथ चलने से ही, प्रकृति में भी इसके विस्तार और पुनः अपनी मूल स्थिति में लौट जाने के दोनों संकल्प साथ–साथ चल रहे हैं, जिसके कारण इसमें केन्द्रगामी एवम् केन्द्रापसारी दोनों ही शक्तियों का एक साथ प्रयोग संभव हुआ है।

सूक्ष्म प्रकृति में अनेक शक्ति केन्द्रों के निर्माण के साथ ही उनमें केन्द्रगामी एवम् केन्द्रापसारी दोनों शक्तियों के एक साथ ही कार्य करने से उत्पन्न आकर्षण के फलस्वरूप परस्पर आदान–प्रदान का क्रम भी शुरु हो जाता है, और इस क्रम के आगे बढ़ने पर परमाणुओं का निर्माण होने लगता है। यह क्रम यहीं पर नहीं रुक जाता और क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होते हुए अबाध गति से चलता ही रहता। है। तमोगुण बढ़ने पर कोई भी वस्तु ऊपर से स्थूल दिखायी देने पर भी उसमें भीतर ही भीतर प्राण वलय और शक्ति केन्द्र कार्य करता रहता है।

शोध के उद्देश्य

1. सूर्यनमस्कार की पद्धति में उपयोगी शारीरिक एवम् मानसिक क्रियाओं सहित इस प्रक्रिया को निर्दोष बनाकर प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए अधिकाधिक मात्रा में प्राण को धारण करके शक्ति सम्पन्न बनने का प्रयास किया जाता है।
2. किसी भी कर्म को अगर कर्तव्य समझकर निष्ठापूर्वक सम्पन्न किया जाय तो वह विलक्षण परिणाम लाता है।
3. मन के शुद्ध होने से नित्य हमारे आनन्द में वृद्धि होती रहेगी, जिससे यह कर्म हमारे लिए न तो उबाऊ अथवा नीरस ही रहेगा और न ही हमें इस कर्म को सम्पादित करने के लिए ज्ञात/ अज्ञात भय, प्रशंसा अथवा किसी अन्य प्रलोभन की आवश्यकता होगी।

शोध का निष्कर्ष

सूर्य की किरण में प्रकाश तो होता ही है, साथ ही गति, शक्ति, क्रियाशीलता, हल्कापन, सूक्ष्मता और विस्तार भी अधिक होता है। यह अपेक्षाकृत शुद्ध भी तो होती है। अतः आप जान गये होंगे कि ये गुण इसमें रजस् की अधिकता के कारण ही आते हैं, अतः इसे रजोगुणी प्राण भी कहा जा सकता है।

यदि किरण की गति को घटाते जायें, तो परिणाम सही नहीं होगा। गति का कारण तो रजोगुण है न, अतः गति के घटने से रजोगुण भी घटेगा ही और इसी अनुपात में क्रमशः तमोगुण भी तो बढ़ेगा, और इसके परिणाम स्वरूप वह न केवल अपेक्षाकृत भारी व स्थूल होती जायेगी बल्कि उसकी शक्ति व क्रियाशीलता भी घटेगी हीय तब फिर उसका विस्तार भी पहले जितना नहीं रह पायेगा। अतः इस स्थिति में इसे प्राण का तमोगुणी रूप भी तो कहा जा सकता है। भारीपन, जड़ता आदि गुणों की अधिकता वाली हमारी पृथ्वी भी इस प्राण का तमोगुणी रूपान्तरण ही तो है।

पृथ्वी पर जितनी वस्तुएँ दिखायी देती हैं, उनकी विभिन्नता का कारण भी इन तीनों गुणों का उन वस्तुओं में कम–ज्यादा होना ही है। अतः पृथ्वी पर उपलब्ध कोई भी पदार्थ और ऊर्जा (प्राण) स्वरूपतः दो भिन्न वस्तुएं नहीं है। ऊर्जा ही तमोगुण की अधिकता के कारण स्थूल पदार्थ में परिणत होती है। इसी प्रकार स्थूल पदार्थ में अपेक्षित रजोगुण के बढ़ जाने से वह ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाता है।

स्वाभाविक ही रूपान्तरण के इस क्रम में मल अथवा जड़ता को क्रमशः त्यागकर शुद्ध होता हुआ पदार्थ सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता चला जाता है, साथ ही अधिकाधिक शक्तिशाली भी बनता जाता है। यदि यह क्रम जारी रहे, तो वह प्रकाश की किरण (रजोगुणी प्राण) ही बन जाता है ।

ISSN: 2393-8048
International Advance Journal of Engineering, Science and Management (IAJESM)
Multidisciplinary, Multilingual, Indexed, Double Blind, Open Access, Peer-Reviewed, Refereed-International Journal.
SJIF Impact Factor =8.152, January-June 2025, Submitted in January 2025

यदि एक किरण में गति तो घटती जाय परन्तु उसमें प्रकाश की वृद्धि होती जाय, साथ ही वह किरण अधिक सूक्ष्म व शुद्ध होती जाय तो इस स्थिति में उसे प्राण का सतोगुणी रूप कहा जाता है। हम समझ सकते हैं कि, क्रमशः रजोगुण के घटने व सतोगुण के बढ़ने से ही यह परिणाम आता है। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रकृति में एक ही श्प्राणश सत्त्व, रजस, तमस् आदि गुणों के तारतम्य के कारण ही अनेक रूपों में अभिव्यक्त हुआ है।

यदि एक ही प्राण विविध रूपों में अभिव्यक्त नहीं हुआ होता तो, वर्तमान में भी जो सभी जगह एक वस्तु का दूसरी में रूपान्तरण हो रहा है, वह सम्भव ही कैसे हो सकता था ? परन्तु क्रियाशीलता एवम् ऊर्ध्वगमन में हेतु होने के कारण समझने में सुविधा की दृष्टि से प्राण के राजसिक–सात्विक रूप को ही प्रायः श्प्राणश शब्द से सम्बोधित किया जाता है।

यह तो अब भली–भाँति सिद्ध हो चुका है कि प्रत्येक परमाणु में ऊर्जा का एक विशाल भण्डार छुपा हुआ है। लेकिन लाखों परमाणुओं से निर्मित किसी वस्तु पर हथोड़े से आघात पर आघात करते चले जायें, तो हम उसमें स्थित ऊर्जा का हजारवाँ अंश भी मुक्त नहीं कर पायेंगे।

इसका उपाय तो परमाणु के अन्तःस्थल (नाभिक अथवा शक्ति केन्द्र) पर आघात करना ही है, और इसके लिये साधन भी उतना ही सूक्ष्म व शक्तिशाली लेना होगा जितना कि उसका नाभिक है।

इस प्रक्रिया में हम ऊर्जा को भले ही मुक्त कर पायें परन्तु किसी को भी विक्षुब्ध करके उसको स्वरूपतः नहीं जाना जा सकता। परमाणु के विखण्डन की प्रक्रिया में, उसके विक्षुब्ध होने से उत्पन्न राजसिक तामसिक प्रतिक्रिया की आँधी उसके भीतर स्थित सत्त्व को प्रकट नहीं होने देती है और किसी को मारकर उसके भीतर जीवन ढूंढने का प्रयास क्या हास्यास्पद है।

अतः भारतीय आचार्यों का यह निश्चित मत है कि किसी वस्तु को खण्ड–खण्ड करने से उसमें उत्पन्न होने वाली प्रतिक्रिया को लक्ष्य करके उसका यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसका श्रेष्ठ उपाय तो वस्तु आदि में स्थित शक्ति केन्द्र के साथ हमारे मन का तादात्म्य ही है, जो हमें उसका स्वरूपतः ज्ञान करवाने में समर्थ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वामी सत्यानंद सरस्वती। योग प्रकाशन ट्रस्टय मुंगेर, बिहार, भारतः 2009। योग और क्रिया की प्राचीन तांत्रिक तकनीकों में एक व्यवस्थित पाठ्यक्रमय पी।
2. वेंकटसुब्रमण्यम एस. आदित्य ह्रदयम (अंग्रेजी) श्री रामकृष्ण मठय चेन्नई, भारतः 2021. पीपी 1–24।
3. अन्ना, श्री रामकृष्ण मठ, चेन्नईय चेन्नई, भारतः 1976। तैत्तिरीय मंत्रकोसम (तमिल) पीपी. 66–76।
4. श्रीमंत बालासाहब पंडित प्रतिनिधि, लुईस मॉर्गन द्वारा संपादित। लंडन। जेएम डेंट एंड संस लिमिटेडय लंदनः 1938. पीपी. 24–33.
5. सोजोमन एनई दूसरा संस्करण। अभिनव प्रकाशनय नई दिल्ली, भारतः 1999. मैसूर महल की योग परंपराय पी। 54.
6. सिंगलटन एम. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेसय लंदनः 2010। योग शरीर, आधुनिक अभ्यास मुद्रा की उत्पत्तिय पीपी. 179–210.
7. सत्यानंद सरस्वती स्वामी। योग प्रकाशन ट्रस्टय बिहार, भारतः 2008। आसन प्राणायाम मुद्रा बंध। मुंगेरय पृ. 159–172.
8. रामास्वामी एस. दा कैपो प्रेस प्रकाशनय इटलीः 2005। विन्यास योग की संपूर्ण पुस्तक, पृ. 213–219.
9. दुर्गानंद स्वामी, शिवसानंद स्वामी, कैलाशानंद स्वामी। दूसरा संस्क, डीके पेंगुइन रैंडम हाउसय लंदनः 2018। योग, आपका घरेलू अभ्यास साथीय पीपी. 87–93.
10. विवेकानन्द केन्द्र, योग ट्रस्ट। आसन प्राणायाम मुद्रा क्रिया। तमिलनाडु विवेकानंद केंद्र प्रकाशनय चेन्नईइंडियाः 1977. पीपी. 24–27.